अध्याय पञ्चम

न्याय व्यवस्था

प्रशासनिक संस्था का न्यायिक व्यवस्था से अनिवार्य घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जन–सामान्य को अराजक स्थिति से बचाने हेतु न्याय व्यवस्था का संघटन हुआ। राज्य में सुख–समृद्धि का प्रसार न्याय का मुख्य मन्तव्य था। दण्ड्य व्यक्ति दण्ड से बच न पाये और अदण्ड्य व्यक्ति दण्डित न होने पाए। एतदर्थ राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह स्वयं न्याय का वितरण करे, न्यायालयों की स्थापना कर न्यायाधीशों की नियुक्ति करे। किसी भी राजा द्वारा प्रजा रक्षण के कार्य सम्पादन में किसी न किसी प्रकार से दुष्टों के दमन का भी कार्य करना पड़ता है। राजा यह कार्य दो प्रकार से करता है, न्याय व्यवस्था की स्थापना एवं दण्ड द्वारा।[1]

न्यायकर्ता के कर्त्तव्य तथा न्याय प्रक्रिया की विधिवत् जानकारी के लिए जिस बुद्धि की आवश्यकता होती है, कालिदास ने उसे 'शास्त्रेष्व– कुण्ठिता बुद्धिः'[2] कहा है, जिसका तात्पर्य ऐसी तीव्र बुद्धि से है, जो शास्त्रों की सूक्ष्मता तक पहुंचने का सामर्थ्य रखती हो, क्योंकि शास्त्र ही न्याय एवं दण्ड के आधार माने गये थे। जब तक शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान नहीं होगा, न्यायकर्ता अपराधी को अपराध की मात्रा के अनुसार दण्ड देने की योग्यता नहीं प्राप्त कर सकेगा।[3] कालिदास ने अपने चरित्र नायकों में न्याय एवं दण्ड

---

1 कृष्ण कुमार : प्रा०भा० की प्रशासनिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ, पृ० 297.

2 राधा शर्मा, कालिदास का राजतन्त्र, पृ० 184.

3 राधा शर्मा, कालिदास का राजतन्त्र, पृ० 184

सम्बन्धी पूर्ण योग्यता का चित्रण किया है, जिन्होंने न्याय एवं दण्ड को धर्म के रूप में स्वीकार किया है और उसका प्रतिपालन अत्यन्त तत्परता एवं सावधानीपूर्वक किया है।[4]

विद्याध्ययन के क्रम में राजा को धर्मशास्त्रों के साथ–साथ नीतिशास्त्र की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी, अतः कानून का सम्पूर्ण ज्ञान उसी दौरान राजा को हो जाता था। अपने इस ज्ञान का उपयोग वह न्यायिक कार्यों के सम्पादन में करता था। अपराधियों को अपराध के अनुसार[5] दण्ड देने के लिए राजा सूक्ष्म बुद्धि से युक्त हो जाता था।

राजा जनता का गोप्ता होता था और वह न्यायिक मन्तव्यों के अनुरूप कानून का प्रयोग करता था। वह कानून का उद्‌गम नहीं, अपितु उसका संचालक होता था। महाकवि कालिदास की कृतियों के अनुशीलन से कहीं भी यह तथ्य नहीं प्राप्त होता कि राजा कानून निर्माता हो। सिंहासनासीन होने के पूर्व राज नियम थे और राज्याभिषेक के अवसर पर शपथ लेते वह उन कानूनों के अनुसरण की प्रतिज्ञा करता था।[6] सामाजिक व्यवस्थाओं के वर्णाश्रम धर्म का प्रहरी होने के कारण वर्णाश्रम के नियमों के अनुकूल राजा लोगों के उचित–अनुचित, आचार–व्यवहार पर पैनी नजर रखने के लिए सदैव जाग्रत रहता था। राजा का कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करे कि इस नियमों का उचित पालन हो तथा उल्लंघन न होने पाए। सुदक्ष सारथी द्वारा संचालित रथ के समान प्रजा धर्म–पथ से रेखा की कल्पित चौड़ाई–मात्र भी विचलित नहीं होती थी तथा शास्त्रों[7] की निर्धारित लीक

---

4 वही।

5 रघु० 1.6

6 रघु० 1.17

7 रघु०, 2.9

पर एकाग्र होकर चलती थी। दुष्टों के शासन करने वाले के रूप में राजा अपराधियों के लिए पाशधारी वरुण देवता के समान होता था।[8]

न्याय की प्रक्रिया बुद्धिपरक है। इसकी सीमा में मनुष्य की कोमल भावनाओं का प्रवेश बहुत कम होता है। विधान जो कहता है, वही सच है। यही कारण है कि कभी–कभी न्यायकर्ता अपराधी पर सहानुभूति रखते हुए भी उसे दण्ड से नहीं बचा पाते, क्योंकि विधान के अनुसार उसे दण्ड पाना ही चाहिए, परन्तु न्याय व्यवस्था के उद्देश्य का अध्ययन यदि सूक्ष्म दृष्टि से किया जाय, तो उसके मूल में मनुष्य को दुःख और अशान्ति से बचना ही है।

न्याय–कार्य का सम्पादन राजा अकेले नहीं करता था, अपितु वह अन्य मन्त्रियों का सहयोग लेता था। इनमें प्रधान न्यायाधीश अमात्य, ब्राह्मण एवं पुरोहित शामिल होते थे।[9] अभिज्ञानशाकुन्तलम् के छठे अंक में न्याय एवं दण्ड सम्बन्धी कतिपय महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होते हैं। प्रथम तो यह कि राजा न्याय कार्य के प्रति अत्यधिक तत्पर एवं सावधान था। उसे उठने में किञ्चित विलम्ब हो जाता है, परन्तु इस विलम्ब से न्याय कार्य में बाधा न पहुंचे, इसके प्रति सावधान रहते हुए वह अमात्य को कार्य पूर्ण करने का आदेश देता है, परन्तु यह आदेश देकर वह पूर्णतया निश्चिन्त नहीं हो जाता, अपितु, अमात्य द्वारा दिये हुए कार्य का निरीक्षण करता है तथा उसमें आवश्यक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन भी करता है। अपने चरित्र द्वारा ऐसा दिखाकर कालिदास प्राचीन आचार्यों की इस मान्यता का प्रतिपादन

---

8 वही, 1.25

9 अभिज्ञान०–छठा अंक।

करते हैं कि न्याय कार्यों में राजा को अत्यधिक सावधान रहना चाहिए तथा अकेले ही कोई निर्णय नहीं करना चाहिए।[10]

महाकवि कालिदास की कृतियों के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि राजा के न्याय कार्यों का समय निश्चित होता था। न्याय गुप्त रीति से नहीं किया जाता था, वरन् प्रजाजन न्याय कार्य का अवलोकन कर सकते थे। मालविकाग्निमित्रम् के एक प्रसंग से संकेतित होता है कि जब राजा न्यायासन से उठता था, तो उसके आगे–पीछे प्रजा जय–जयकार करती चलती थी तथा उस समय इतनी भीड़ हो जाती थी, जिससे बचने के लिए मार्ग के एक ओर खड़ा होना पड़ता था।[11]

कालिदास ने न्याय पीठ के लिए मुख्यतः व्यवहारासन एवं धर्मासन नामों का उल्लेख किया है। व्यवहारासन राजा के कर्त्तव्यों के व्यावहारिक पक्ष की ओर संकेत करता है। इसमें वह विधि एवं नियमों की रक्षा करते हुए न्याय कार्य का सम्पादन करता था। धर्मासन न्याय के धार्मिक पक्ष (धर्म–कार्य) का उल्लेख है, जो इस तथ्य का संकेत करता है कि राजा को न्याय–कार्य धर्म के रूप में अपनाना चाहिए।[12] वस्तुतः न्याय के व्यवहार एवं धार्मिक पक्ष परस्पर अन्योन्याश्रयी हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था का संचालन तथा प्रजा का सुख एवं कल्याण का ध्यान रखना शासन का धर्म है। यह लक्ष्य जिस विधि एवं प्रक्रिया से प्राप्त किया जाता है, वही व्यवहार है। इस प्रकार न्याय का धार्मिक पक्ष उसका साध्य तथा व्यावहारिक पक्ष उसका साधन है। राजा को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों

---

10 राधा शर्मा, वही, पृ० 185.

11 वही, पृ० 186.

12 वही।

का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, साथ ही अपने कर्त्तव्य निर्वाह में अत्यधिक जागरूक रहेगा, तभी न्यायिक कार्यों का सम्पादन विधिवत् करने में सक्षम होगा।

न्यायिक प्रक्रिया –

अपराधियों को यथापराध दण्ड देने हेतु नियमों की व्यवस्था थी। शासन (दण्डनीति) की कला दण्ड की नीति थी। अतः राज्य व्यवस्था का सार तत्त्व दण्ड नियम ही था। राज्य के एकमात्र अस्तित्व के लिए अपराधियों का दमन करना और उन्हें न्यायाधीशों के सम्मुख उपस्थित देखना आवश्यक था।[13] एक निश्चित तथा पूर्ण कानून के अनुरूप दण्ड विधान होता था, जिसमें अपराध का गुरुता के आधार पर वर्गीकरण होता था।[14] निष्काम भाव से रजोगुण रहित ही राजा प्रजा का शासन करता था। राजा के मनमौजी, उद्दण्ड तथा अहंकार, विचार रहित और अनुचित आचरण से राजा के रजोगुण का अभिज्ञान हो जाता था। राजा न्याय करने के लिए अपने न्याय मन्त्री एवं अन्य अमात्यों के साथ न्यायालय में विराजमान होता था।[15]

न्यायालय –

न्यायिक कार्यों के सम्पादन हेतु न्यायालय सामान्यतया प्रासाद के बाहर बनाये जाते थे। न्यायालय में राजा शास्त्र द्वारा निर्धारित समय पर आता था तथा नगरवासियों के कार्यों का निरीक्षण करता था।[16] ध्यातव्य है कि राजा का दिन आठ भागों में विभक्त

---

13 रघु० 1.25

14 विक्रम० 1.23

15 शाकु० 5.8

16 विक्रम०, पृ० 26.

था, जिसमें से दूसरा भाग अनुरोध के मुकद्दमों को सुनने के लिए नियत था। प्रजा के मामलों की प्रवृत्ति को आलोचनात्मक दृष्टि से समझने तथा उन पर अपना निर्णय देने के लिए राजा न्यायासन पर विराजमान होता था।[17] वादी तथा प्रतिवादियों के पेचीदा मामलों को वह अत्यन्त सावधानीपूर्वक निरीक्षण करता था, जो सन्देहास्पद होने के कारण सावधान विश्लेषण की आवश्यकता रखते थे।[18] न्यायपीठ व्यवहारासन, धर्मासन एवं कार्यासन कहलाते थे।[19] मध्याह्न के पूर्व काल विभाजन के क्षणों में राजा न्यायाधीश के रूप में न्यायासनारूढ़ होता था। न्यायालयों में लोग अधिक जाते थे।[20]

अपराध एवं दण्ड –

महाकवि कालिदास की कृतियों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि वे अपराधी नियम की कठोर से कठोर धाराओं के हिमायती थे। अपराधी नियम के अनुसार चोरी के अपराध का दण्ड मृत्यु थी।[21] धीवरमात्र चौरकर्म का अपराधी था। यद्यपि वह चोरी राजकीय रत्न की थी, तथापि उसे शूली पर चढ़ाकर, कुत्ते से नुचवाकर अथवा गिद्धों का शिकार बनाकर मार डालने की बात सोची जा रही थी।[22] चौरकर्म हेतु मृत्यु–दण्ड मानव धर्मशास्त्रविहित थी, जिसमें चौर कर्म के लिए तादृश दण्ड का विधान था। प्राण दण्ड की सजा पाये हुए व्यक्ति को शूली पर चढ़ाकर तथा उसके निष्प्राणशरीर को कुत्तों और गिद्धों

---

17 रघु० 17.39 – प्रकृतीरवेक्षितुं व्यवहारासन माद दे।

18 रघु० 17.39

19 वही, 8.18; विक्रम० पृ० 26; शाकु० पृ० 154, 194.

20 विक्रम० पृ० 26

21 शाकु०, पृ० 186.

22 वही।

को खाने के लिए डालकर कार्यान्वित की जाती थी।[23] शूली पर चढ़ाने के पूर्व मृत्यु दण्ड के अपराधी को फूलों से सजाया जाता था।[24] हत्या का दण्ड कानून के अनुसार मृत्यु था।[25] प्राण दण्ड देने के पहले प्राण दण्ड विधायक अधिकारी के पास आज्ञा पत्र अथवा राजकीय लेख अवश्य पहुँचाया जाता था।[26]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कालिदास ने अपराधियों के लिए अत्यन्त कठोर सजा का विधान किया तथा कानून के अपराध पूर्वक भंग हेतु निष्ठुर विधान किया था। 'मालविकाग्निमित्रम्' से अभिज्ञात होता है कि अपराधिनी स्त्रियों के लिए भी हथकड़ी एवं बेड़ियाँ पहनायी जाती थी।[27] अपराधी नियमों के कठोर होने का अर्थ यह नहीं था कि लोग इन अपराधियों एवं अपराधों को नहीं जानते थे।[28] राज्य में मार्ग दस्युओं का आतंक था, जो हथियारबन्द व्यापारियों को भी अपने बलशाली संगठन से परास्त कर लूट लिया करते थे।[29]

दण्ड के प्रकार –

कालिदास की दृष्टि में कठोर दण्ड देने वाला राजा प्रजा की दृष्टि में गिर जाता है और जो दण्ड को कोमल बनाता है, वह उनकी घृणा का पात्र होता है।[30] अतः

---

23 शाकु०, पृ० 186.

24 वही।

25 रघु० 9.8 – इत्थं गते ग्राघृणाकिमयं विधन्तां वध्यस्तवेत्य भिहितो वसुधा धिपेन।

26 शाकु०, वही पत्रहस्तो राजशासनम्।

27 माल०, पृ० 64.

28 शाकु०, पृ० 183

29 वही, पृ० 184; माल० 5.10

30 रघु० 8.9

कालिदास राजा को अपराध हेतु दण्ड के विनिश्चयन हेतु मध्यम मार्ग के अनुसरण की सलाह देते हैं। अपराधी को दण्ड देने में उनका आदर्श है– यथापराध दण्ड।[31] जीवित अपराधी को गिद्धों के समक्ष नोचने–खाने के लिए डाल देना या मार कर इसे इनका आहार बना देने तथा शिकारी कुत्तों के सामने खाने के लिए छोड़ दिए जाने जैसे क्रूर दण्डों का प्रचलन था। आधा धड़ भूमि में गाड़ कर शेष पर शिकारी कुत्ते छोड़ देने की प्रथा प्रचलित थी।[32] धर्मासन द्वारा दिए जाने वाले दण्ड के अतिरिक्त राजमहिषी को अन्तःपुर के किसी भी व्यक्ति को दण्डित करने का अधिकार था। काल कोठरी भूमि के नीचे होती थी, जिसमें दण्डित अपराधियों को बन्द किया जाता था। इसमें सूर्य की किरणों तक का प्रवेश नहीं होता था। अपराधी हाँथ–पाँव बाँधकर इनमें डाल दिए जाते थे तथा बन्दी को किसी से मिलने– जुलने नहीं दिया जाता था।[33]

कारागार –

राजप्रासाद के एकान्त स्थान पर पृथ्वी के नीचे अन्धकूप में कारागार बना होता था, जिसे 'पातालवासम्' कहा जाता था।[34] बन्दीगृह को सार–भाण्ड कहा जाता था।[35] मालविकाग्निमित्रम् में प्रासाद के बाहर कारागार होने के उल्लेख मिलते हैं साथ ही

---

31 अग्निहोत्री, पी०डी०, महाकवि कालिदास, तृतीय खण्ड, पृ० 218–19.

32 वही।

33 वही।

34 रघु० 6.40; माल०, पृ० 64.

35 अग्निहोत्री, वही, पृ० 219.

निगलपघा एवं निगलबन्धन शब्दों से हथकड़ियों एवं बेड़ियों के होने का संकेत मिलता है।[36]

गवाही[37] –

किसी भी व्यक्ति को तब तक अपराधी नहीं कहा जाता था, जब तक उसका दोष सिद्ध नहीं हो जाता था। अपराध सिद्ध होने के लिए गवाही (साक्षी) होती थी। गवाही के मामलों में वातावरण एवं साक्षी के आचरण का परीक्षण समुचित रीति से सम्पन्न किया जाता था। स्वभावतया धार्मिक व्यक्ति की गवाही कुटिल व्यक्ति की अपेक्षा अच्छी समझी जाती थी। उस व्यक्ति के वचन को ही प्रमाण मान लिया जाता था, जिसने कभी मूर्खता जन्मना नहीं की होती थी। चुराई गई वस्तुओं में यदि किञ्चित अंश भी किसी के पास बरामद की जाती थी तो उससे सारी वस्तु को बरामद करवाया जाता था।[38] ऐसा इसलिए कि उसी के द्वारा सारी वस्तु को चुराया गया होगा। न्याय सम्पादन की यह प्रक्रिया राजा के प्रजा के हित साधन की चिन्ता का संकेत करती है। प्रजा के प्रति न्याय करने एवं अपराधियों को उचित दण्ड देने तथा अपराधियों के लिए कानूनी दोष निवारण हेतु राजा की कटिबद्धता यह सिद्ध करती है अपराध कम होते रहे होंगे। सामाजिक अपराधों के कारण जो रोग उत्पन्न होने वाले समझे जाते हैं, वे लुप्त हो जाते थे।[39] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राज्य में स्वभावतः शान्ति एवं समुन्नति का विस्तार होना ही था। एक स्थल पर कवि द्वारा कहा गया है कि पृथ्वी पर जब तक उसका (राजा का) राज्य

---

36 माल०, पृ० 64

37 शाकु०, 5.25.

38 विक्रम०, 4.32.

39 रघु, 9.4

चक्र चल रहा था, तो वायु भी विहार भूमि के अर्द्ध मार्ग में निद्रा को प्राप्त मद्यपी नारियों के वस्त्रों को अस्त–व्यस्त करने का साहस नहीं कर सकती थीं।[40] अतः स्वर्ग के राजा को एक अद्वितीय उत्कृष्ट शासन मात्र समझना ही नितान्त तर्कसंगत है।[41]

राजा जिस आसन पर बैठकर अभियोगों पर विचार करता था, उसे धर्मासन और जनता की प्रार्थनाएं सुनकर उन पर विचार करने का स्थान धर्म सभा (न्यायालय) कहलाती थी।[42] न्यायिक कार्यों में अमात्य उसका हाथ बँटाते थे। अभियोगों की पड़ताल कर तथ्यों को राजा तक पहुँचाने के लिए एक अलग अमात्य होता था और मार्गदर्शन के लिए धर्माध्यक्ष की नियुक्ति की जाती थी। इसका पद विधि मन्त्री सदृश होता था।

पुलिस –

कालिदास के समय भी पुलिस बल होता था, जो इधर–उधर घूम कर अपराधों का पता लगाते और अपराधी को बन्दी बनाते थे। सामान्य सिपाही रक्षी कहलाते थे, जबकि नगर पुलिस के प्रमुख को श्याल कहते थे। यह कोट्टपाल (कोतवाल) सदृश होता था।[43]

गुप्तचर –

शत्रु राज्य ही नहीं, अपितु अपने शासित राज्य की आन्तरिक स्थिति पर सतर्क दृष्टि रखने के लिए तथा दण्ड एवं न्याय व्यवस्था की परिपूर्णता हेतु गुप्तचरों की अनिवार्यता स्वयं सिद्ध थी। कालिदास ने इन्हें राजनीतिक प्रकाश की किरणें कहा है।[44]

---

40 वही, 5.75.

41 वही, 2.50

42 अग्निहोत्री, वही, पृ० 217.

43 अग्निहोत्री, वही, पृ० 218.

44 राधा शर्मा, वही, पृ० 31.

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास के रघुवंशी राजा दण्ड देने में न तो अत्यधिक तीव्र थे और न ही मृदु। अपराधों को रोकने हेतु दण्ड की आवश्यकता होती है, परन्तु यदि बिना दण्ड दिए ही अपराध शान्त है, तो यह कुशल प्रशासन की सर्वोच्च कसौटी है। कालिदास के चरित्र नायकों की प्रभुता का प्रभाव ही ऐसा था कि अपराधी अपराध करने का साहस नहीं करते थे। उनके शासन में दण्ड की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु दण्ड की आवश्यकता नहीं होने पर भी दण्ड व्यवस्था में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं थी।[45]

---

[45] राधा शर्मा, कालिदास का राजतन्त्र, पृ० 31